

बिहार राज्य

बनाम

राय बहादुर हरदत्त राँय मोती लाल जूट मिल्स और अन्य

(और संबंधित अपील)

(बी.पी. सिन्हा, सी.जे., पी.बी. गजेन्द्रगडकर,

के.सुब्बा राव, के.सी. दास गुप्ता और जे.सी. शाह, जेजे.)

बिक्री कर-पंजीकृत विक्रेता द्वारा राज्य के बाहर बिक्री से प्राप्त राशि-ऐसी राशि का ज़ब्त-वैधता-स्वीकार्य कटौती, जिसका अर्थ है-बिहार बिक्री कर अधिनियम, 1947 (1947 का XIX), एस. एस. 5 , 6 , 7 , 8 , 14 ए प्रोविसो, 33, आर 19 प्रावधान।

प्रतिवादी मिल्स, बिहार बिक्री कर अधिनियम, 1947 (1947 का अधिनियम III) के तहत एक पंजीकृत डीलर, कटिहार में गनी बैग, हेसियन और अन्य जूट उत्पादों के निर्माण और बिक्री का व्यवसाय कर रहा था। अप्रैल 1, 1950 से 31 मार्च, 1951 की अवधि के दौरान, इसने राज्य के बाहर के डीलरों को लगभग 92,24,386-1-6 रुपये मूल्य का अपना माल बेचा और भेजा और बिक्री के रूप में 2,11,222-9-6 रुपये की राशि प्राप्त की। उनसे टैक्स. प्रासंगिक अवधि के लिए उक्त प्रतिवादी द्वारा देय बिक्री-कर का आकलन करने में, बिक्री कर अधीक्षक, पूर्णिया ने माना कि बिक्री कर की उक्त राशि आर के साथ पठित अधिनियम की धारा 14 ए के उल्लंघन में प्राप्त की गई थी। बिहार बिक्री कर नियमावली के धारा 19 के प्रावधानों के तहत इसे ज़ब्त करने का निर्देश दिया गया। प्रतिवादी ने संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत उक्त आदेश की वैधता को चुनौती दी। उच्च न्यायालय ने माना कि अधिनियम की धारा 14 ए का प्रावधान राज्य विधानमंडल के अधिकार के बाहर है क्योंकि यह संविधान के अनुच्छेद 20(1) और 31(2) का उल्लंघन करता है और ज़बती के आदेश को रद्द कर दिया और

धारा 14 ए के तहत कार्यवाही को रद्द कर दिया। अधिनियम। बिहार राज्य ने इस न्यायालय में अपील की। प्रतिवादी की ओर से प्रारंभिक आपत्ति के माध्यम से यह आग्रह किया गया था कि चूंकि अधिनियम की धारा 14 ए के प्रावधानों का मामले के तथ्यों पर कोई अनुप्रयोग नहीं है, इसलिए इसकी संवैधानिक वैधता तय करने का कोई अवसर नहीं है। अपीलकर्ता का तर्क यह था कि प्रावधान प्रतिवादी पर लागू होता है क्योंकि उसने प्रावधान द्वारा r.19 पर लगाई गई शर्तों और प्रतिबंधों का उल्लंघन किया है। अतः निर्धारण के लिए प्रश्न यह था कि क्या यह कहा जा सकता है कि उक्त प्रत्यर्थी ने अपने परिवर्तन के ऐसे हिस्से के संबंध में कर के रूप में कोई राशि प्राप्त की है जिसे अधिनियम या नियमों के तहत उसके कर योग्य परिवर्तन के निर्धारण के लिए उसके सकल परिवर्तन से काटने की अनुमति दी गई थी, जैसा कि उक्त परंतुक के बाद के हिस्से में विचार किया गया था।

अभिनिर्धारित किया कि प्रारंभिक आपत्ति प्रबल होनी चाहिए।

इसके अलावा, यह अभिनिर्धारित किया गया कि बिहार बिक्री कर अधिनियम, 1947 की धारा 14 ए के प्रावधान के तहत किसी व्यापारी पर ज़बती का जुर्माना लगाए जाने से पहले, यह दिखाया जाना था कि उसने नियमों द्वारा निर्धारित शर्तों और प्रतिबंधों के विपरीत काम किया था और यह दिखाने के लिए पर्याप्त नहीं था कि उसके द्वारा किया गया बिक्री कर का संग्रह अन्यथा अवैध या अनुचित था। धारा 14 ए में निहित वैधानिक प्रावधानों या उस ओर से शर्तों और प्रतिबंधों को निर्धारित करने वाले नियमों का उल्लंघन ही उक्त परंतुक द्वारा निर्धारित ज़बत के जुर्माने के अधिरोपण का आधार बन सकता है।

पूर्वव्यापी संचालन के साथ अधिनियम में धारा 33 को शामिल करने के साथ, राज्य के बाहर होने वाली बिक्री पर कर लगाने पर प्रतिबंध और बॉम्बे राज्य बनाम

यूनाइटेड मोटर्स (इंडिया) लिमिटेड [1953] एस.सी.आर. में इस न्यायालय के फैसले को देखते हुए। 1069, धारा 19 के परंतुक का अर्थ इस आधार पर लगाया जाना चाहिए कि विचाराधीन बिक्री अधिनियम के दायरे से बाहर थी और उन पर कोई कर नहीं लगाया जा सकता था। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता था कि प्रत्यर्थी के टर्न-ओवर का वह हिस्सा जो विचाराधीन था, उक्त परंतुक के अर्थ के भीतर एक स्वीकार्य कटौती थी। परंतुक द्वारा विचार की गई ऐसी स्वीकार्य कटौती स्पष्ट रूप से अधिनियम की धारा 6, 7 और 8 के प्रावधानों पर आधारित हैं जो अधिनियम की धारा 5 के स्पष्टीकरण से काफी स्पष्ट है।

बॉम्बे राज्य और एक अन्य बनाम यूनाइटेड मोटर्स (इंडिया) लिमिटेड और अन्य, [1953] एस. सी. आर. 1069, संदर्भित।

उक्त परंतुक के तहत एक स्वीकार्य कटौती अधिनियम की धारा 33 (1) (ए) (1) के आधार पर टर्न-ओवर के एक हिस्से के अपवर्जन के समान नहीं थी। यह पूरी तरह से अलग आधार पर खड़ा है। उक्त धारा के अंतर्गत आने वाले लेन-देन अधिनियम के बाहर हैं और उन पर कोई कर नहीं लगाया जा सकता है। इसलिए, विचाराधीन लेन-देन आर. 19 के परंतुक के भीतर नहीं आता था और धारा 14ए का परंतुक आकर्षित नहीं किया गया था और प्रत्यर्थी के खिलाफ पारित ज़बती का आदेश अन्यायपूर्ण और अवैध था।

सिविल अपीलीय अधिकारिता : सिविल अपील संख्या 678/1957।

1955 के विविध न्यायिक मामले संख्या 188 में पटना उच्च न्यायालय के 1 अगस्त, 1956 के निर्णय और आदेश से अपील।

के साथ

सिविल अपील संख्या 546/1958 और 115/1959।

1956 के विविध न्यायिक मामले संख्या 116 और 215 में पटना उच्च न्यायालय के 8 मार्च, 1957 के फैसले और आदेश के खिलाफ अपील।

अपीलार्थी की ओर से लाल नारायण सिन्हा और एस. पी. वर्मा

सी.के. डाफ्टरी, भारत के सॉलिसिटर-जनरल और आर.सी. प्रसाद, सी.ए. संख्या 57 के 678 में प्रतिवादी संख्या 1 के लिए।

मध्यस्थ के लिए बी.सी. घोष और पी.के. चटर्जी।

एच.एन. सान्याल, भारत के अतिरिक्त सॉलिसिटर-जनरल और सी. पी. लाल, सी. ए. संख्या 58 के 546 में प्रतिवादी संख्या 1 के लिए।

एच. एन. सान्याल, भारत के अतिरिक्त सॉलिसिटर-जनरल और पी.के. चटर्जी, 1959 की सी.ए. संख्या 115 में प्रतिवादी संख्या 1 के लिए।

न्यायालय का फैसला न्यायमूर्ति गजेन्द्रगढ़कर ने सुनाया गया।

यह तीन अपीलों का एक समूह है जो संविधान के अनुच्छेद 132 (1) के तहत पटना उच्च न्यायालय द्वारा जारी प्रमाण पत्र के साथ तीन अलग-अलग पंजीकृत विक्रेताओं के खिलाफ बिहार राज्य (जिसे इसके बाद अपीलकर्ता कहा जाता है) द्वारा इस न्यायालय में दायर की गई है कि वे संविधान के अनुच्छेद 20 (1) की व्याख्या के बारे में कानून का एक महत्वपूर्ण प्रश्न शामिल करते हैं। तीनों अपीलों में से प्रत्येक में तथ्य समान हैं, हालांकि बिल्कुल समान नहीं हैं, लेकिन वे बिहार बिक्री कर अधिनियम, 1947 (1947 का अधिनियम XIX) (जिसे इसके बाद अधिनियम कहा जाता है) की धारा 14 ए के प्रावधान के तहत कानून का एक सामान्य सवाल उठाते हैं। तीन पंजीकृत विक्रेताओं के खिलाफ क्रमशः तीन अपीलों में ज़बती के आदेश पारित किए गए हैं, और वे उक्त आदेशों की वैधता के संबंध में कानून का एक सामान्य सवाल उठाते हैं। सहमति से 1957 की सिविल अपील संख्या 678 को हमारे समक्ष मुख्य अपील के रूप में तर्क

दिया गया है और यह स्वीकार किया गया है कि उस अपील में हमारा निर्णय दो अन्य अपीलों को नियंत्रित करेगा। इसलिए हम 1957 की सिविल अपील संख्या 678 में तथ्यों को निर्धारित करेंगे और उस अपील में अपने निर्णय के लिए उठाए गए बिंदुओं के गुण-दोष पर विचार करेंगे।

राय बहादुर हरदुत रॉय मोतीलाल जूट मिल्स, कटिहार (जिसे इसके बाद पहला प्रतिवादी कहा जाता है) उस समय अधिनियम के तहत एक व्यापारी के रूप में पंजीकृत था और पूर्णिया जिले के राय बहादुर कटिहार में बोरे, हेसियन और अन्य जूट उत्पादों के निर्माण और बिक्री का व्यवसाय कर रहा था। 1 अप्रैल, 1950 से 31 मार्च, 1951 की अवधि के दौरान, उक्त प्रतिवादी ने बिहार राज्य के बाहर के डीलरों को लगभग 1-6 रुपये का अपना माल बेचा और भेजा और ऐसे डीलरों से बिक्री कर के रूप में 9-6 रुपये की राशि प्राप्त की। संबंधित अवधि के लिए बिक्री कर के लिए उक्त प्रतिवादी का आकलन 31 मई, 1953 को बिक्री कर अधीक्षक, पूर्णिया (जिसे इसके बाद दूसरा प्रतिवादी कहा जाता है) द्वारा किया गया था और इन कार्यवाहियों के परिणामस्वरूप जब्त करने का विवादित आदेश पारित किया गया।

इस बीच संविधान के अनुच्छेद 286 के साथ-साथ अन्य अनुच्छेदों पर इस न्यायालय द्वारा बॉम्बे राज्य और अन्य बनाम यूनाइटेड मोटर्स (इंडिया) लिमिटेड और अन्य (1) में विचार किया गया था। इस न्यायालय को उस मामले में जिस प्रश्न पर विचार करना था, वह बॉम्बे बिक्री कर अधिनियम, 1952 (1952 का अधिनियम 24) के विवादित प्रावधानों के अधिकार के बारे में था और उक्त प्रश्न के निर्णय के लिए अनुच्छेद 286 पर विचार किया जाना था। उस मामले में बहुमत के फैसले के अनुसार अनुच्छेद 286 (1) (ए) को उसके स्पष्टीकरण के साथ पढ़ा जाता है और अनुच्छेद 301 और अनुच्छेद 304 के आलोक में समझा जाता है, जो उस राज्य को छोड़कर सभी राज्यों द्वारा अंतर-राज्यीय तत्वों से जुड़ी बिक्री या खरीद के कराधान को प्रतिबंधित करता है

जिसमें उपभोग के उद्देश्य से माल वितरित किया जाता है। बाद वाला राज्य इस तरह की बिक्री या खरीद पर कर लगाने के लिए स्वतंत्र है और यह शक्ति अनुच्छेद 286 (1) के स्पष्टीकरण के आधार पर नहीं बल्कि सूची II की प्रविष्टि 54 के साथ पठित अनुच्छेद 243 (3) के तहत प्राप्त करता है। यह विचार कि स्पष्टीकरण उस राज्य को, जिसमें माल में संपत्ति अपनी कर लगाने की शक्ति से वंचित नहीं करता है और इसके परिणामस्वरूप जिस राज्य में माल में संपत्ति गुजरती है और जिस राज्य में माल उपभोग के लिए वितरित किया जाता है, दोनों को कर लगाने की शक्ति है, सही नहीं है।

जब पहले प्रतिवादी का मूल्यांकन दूसरे प्रतिवादी द्वारा किया गया तो उसका ध्यान यूनाइटेड मोटर्स (1) के मामले में इस न्यायालय के फैसले की ओर आकर्षित हुआ; उन्होंने उक्त निर्णय का पालन किया और माना कि राज्य के बाहर के खरीदारों को विनिर्मित जूट उत्पादों के प्रेषण के कारण 92,24,386-1-6 रुपये के कारोबार को कर लगाने से छूट दी गई थी; इसका मतलब अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार पहले प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत रिटर्न में दिखाए गए कुल कारोबार की राशि से उक्त राशि की कटौती है।

इसके बाद दूसरे प्रतिवादी ने अधिनियम की धारा 14 ए के तहत पहले प्रतिवादी के खिलाफ कार्यवाही की और 18 जून, 1954 को इस संबंध में एक नोटिस जारी किया। इस नोटिस के द्वारा पहले प्रतिवादी को यह बताने के लिए बुलाया गया कि क्यों पूरी राशि रु. 2,11,222-9-6 जो उसने डीलरों से बिक्री कर के रूप में वसूल किया था, उसे सरकार को जब्त नहीं करना चाहिए। पहले प्रतिवादी ने कारण बताया लेकिन दूसरा प्रतिवादी पहले प्रतिवादी द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण से संतुष्ट नहीं था, और इसलिए उसने पहले प्रतिवादी को उक्त राशि को सरकारी खजाने में जमा करने और एक महीने के भीतर भुगतान का प्रमाण उसके सामने पेश करने का निर्देश दिया। उसके आदेश की प्राप्ति. यह आदेश 1 फरवरी, 1955 को पारित किया गया था। इससे पता चलता है कि

दूसरे प्रतिवादी ने सोचा कि उसके निर्णय के लिए उठाया गया मामला सरल था; पहले प्रतिवादी ने अपीलकर्ता के लिए और उसकी ओर से अपने ग्राहकों से अधिनियम के तहत कर के रूप में प्रश्नगत राशि एकत्र की थी, और इसलिए वह उक्त राशि को बरकरार नहीं रख सका; इसे राज्य के खजाने में जाना चाहिए। उन्होंने यह भी माना कि पहले प्रतिवादी ने खरीददारों को यह दर्शाया था कि राशि अधिनियम के तहत बिक्री कर के रूप में प्रभार्य थी और इस तरह पहले प्रतिवादी ने स्पष्ट रूप से कहा था बिहार बिक्री कर नियमावली के नियम 19 के साथ पठित अधिनियम की धारा 14 ए के स्पष्ट प्रावधानों का उल्लंघन किया गया (इसके बाद इसे नियम कहा जाएगा)। इन निष्कर्षों पर ही दूसरे प्रतिवादी ने ज़बती का विवादित आदेश पारित किया। इसके बाद पहले प्रतिवादी ने उक्त आदेश की वैधता को चुनौती देते हुए संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत पटना उच्च न्यायालय में आवेदन किया। उनकी ओर से यह आग्रह किया गया था कि धारा 14 ए का परंतुक जिसके तहत विवादित आदेश पारित किया गया था, पहले प्रतिवादी के मामले में लागू नहीं होता था, और इस तरह आदेश उक्त परंतुक द्वारा उचित नहीं था। यह भी तर्क दिया गया कि यदि यह माना जाता है कि उक्त परंतुक ने विवादित आदेश को उचित ठहराया है तो यह राज्य विधानमंडल के अधिकार क्षेत्र से बाहर है क्योंकि यह संविधान के अनुच्छेद 20 (1) और अनुच्छेद 31 (2) का उल्लंघन करता है। उच्च न्यायालय ने अपने समक्ष उठाए गए पहले तर्क पर विचार नहीं किया; इसने पहले प्रतिवादी द्वारा आग्रह किए गए दो संवैधानिक बिंदुओं पर विचार किया और उन दोनों पर उनके पक्ष में पाया। इन निष्कर्षों पर पहले प्रतिवादी द्वारा दायर याचिका को अनुमति दी गई, ज़ब्त करने के विवादित आदेश को दरकिनार कर दिया गया और धारा 14 ए के तहत पहले प्रतिवादी के खिलाफ की गई कार्यवाही को रद्द कर दिया गया। अपीलार्थी ने तब संविधान के अनुच्छेद 132 (1) के तहत उक्त उच्च न्यायालय से प्रमाण पत्र के लिए आवेदन किया और प्राप्त किया।

अपीलार्थी की ओर से श्री लाल नारायण सिन्हा ने तर्क दिया है कि उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में गलती की है कि धारा 14 ए का परंतुक संविधान के अनुच्छेद 20 (1) या अनुच्छेद 31 (2) का उल्लंघन करता है। उन्होंने अपने मामले के समर्थन में हमें विस्तार से संबोधित किया है कि विवादित परंतुक द्वारा दोनों में से किसी भी अनुच्छेद का उल्लंघन नहीं किया गया है। दूसरी ओर, विद्वान सॉलिसिटर जनरल ने उक्त दो संवैधानिक बिंदुओं पर उच्च न्यायालय के निष्कर्षों का समर्थन करने की मांग की है; और उन्होंने हमारे सामने प्रारंभिक बिंदु के रूप में अपने तर्क पर जोर दिया है कि एक निष्पक्ष और उचित निर्माण पर, परंतुक को पहले प्रतिवादी के मामले में लागू नहीं किया जा सकता है। इसलिए, हम पहले इस प्रारंभिक बिंदु पर चर्चा करेंगे। जिन मामलों में सांविधिक प्रावधानों के अधिकारों को सांविधिक आधारों पर चुनौती दी जाती है, वहां यह आवश्यक है कि पहले भौतिक तथ्यों को स्पष्ट किया जाए और यह निर्धारित करने के लिए पता लगाया जाए कि क्या विवादित सांविधिक प्रावधान आकर्षित हैं या नहीं; यदि वे हैं, तो उनकी वैधता को संवैधानिक चुनौती की जांच की जानी चाहिए और निर्णय लिया जाना चाहिए। हालाँकि, यदि स्वीकार किए गए या साबित किए गए तथ्य विवादित प्रावधानों को आकर्षित नहीं करते हैं, तो उक्त प्रावधानों के अधिकारों के बारे में मुद्दे को तय करने का कोई अवसर नहीं है। उक्त प्रश्न पर कोई भी निर्णय ऐसे मामले में विशुद्ध रूप से अकादमिक होगा। न्यायालय केवल शैक्षणिक महत्व के मामलों के रूप में संवैधानिक बिंदुओं पर निर्णय लेने के लिए अनिच्छुक हैं और उन्हें होना चाहिए।

प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा उठाए गए प्रारंभिक बिंदु पर विचार करने से पहले अधिनियम की प्रासंगिक योजना को संक्षेप में संदर्भित करना आवश्यक है। यह अधिनियम मूल रूप से 1947 में पारित किया गया था क्योंकि विधानमंडल ने बिहार के राजस्व में वृद्धि करना और उस उद्देश्य के लिए बिहार में माल की बिक्री पर कर लगाना



आवश्यक समझा था। अधिनियम के प्रावधानों के साथ-साथ इसके तहत बनाए गए वैधानिक नियमों को बाद में समय-समय पर संशोधित किया गया है। हमारी वर्तमान चर्चाओं में हम उन प्रावधानों और नियमों का उल्लेख करेंगे जो उस समय लागू थे। जिन वस्तुओं की बिक्री पर अधिनियम के तहत कर लगाया जाता है, उन्हें धारा 2 (डी) द्वारा परिभाषित किया गया है, जिसका अर्थ है विशेष रूप से छोड़कर अन्य सभी प्रकार की चल संपत्ति। धारा 2 (छ) "बिक्री" को अन्य बातों के साथ-साथ नकद या अन्य कारणों से माल में संपत्ति के किसी भी हस्तांतरण के रूप में परिभाषित करती है और इसके लिए दूसरा परंतुक यह निर्धारित करता है कि किसी भी माल की बिक्री-(1) जो वास्तव में उस समय बिहार में है जब उस अधिनियम की धारा 4 में परिभाषित बिक्री का अनुबंध किया जाता है, या (2) जो बिहार में उत्पादक या निर्माता द्वारा उत्पादित या निर्मित किया जाता है, जहां भी बिक्री का वितरण या अनुबंध किया जाता है, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए बिहार में हुआ माना जाएगा। अधिनियम के तहत देय कर को धारा 2 (एच.एच.) द्वारा परिभाषित किया गया है जिसमें धारा 5 के पहले परंतुक के तहत कर के बदले में निर्धारित शुल्क शामिल है, जबकि धारा 2 (आई) के तहत "कारोबार" का अर्थ है किसी व्यापारी द्वारा माल की बिक्री या आपूर्ति या दिए गए समय के दौरान किए गए किसी अनुबंध को पूरा करने के संबंध में प्राप्त और प्राप्त बिक्री मूल्यों की कुल राशि, या जहां कारोबार की राशि निर्धारित तरीके से निर्धारित की जाती है, इस तरह से निर्धारित राशि। धारा 4, जो कि प्रभार अनुभाग है, यह प्रावधान करती है कि प्रत्येक व्यापारी जिसका निर्दिष्ट अवधि के दौरान बिहार में और उसके बाहर हुई बिक्री पर सकल कारोबार 10,000 रुपये से अधिक है, वह उस बिक्री पर कर का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होगा जो बिहार में अधिनियम के प्रारंभ होने की तारीख से हुई है। इस धारा से पता चलता है कि कराधान की घटना को केवल तभी आकर्षित किया जा सकता है जब विक्रेता का सकल कारोबार 10,000 रुपये से अधिक

हो और इस निर्धारित न्यूनतम को निर्धारित करने में, बिहार और बाहर दोनों जगह होने वाली बिक्री को ध्यान में रखा जाता है। धारा 5, कर योग्य कारोबार पर एक रुपये में छह पाई पर कर की दर निर्धारित करती है। इस धारा के परंतुक राज्य सरकार को विशिष्ट शक्तियां प्रदान करते हैं; पहला परंतुक जो हमारे उद्देश्य के लिए प्रासंगिक है, राज्य सरकार को अधिसूचना द्वारा एक रुपये में एक वर्ष से अधिक की कर की उच्च दर या ऐसी अधिसूचना में निर्दिष्ट किसी भी वस्तु या माल के वर्ग की बिक्री के संबंध में कर की कोई कम दर निर्धारित करने का अधिकार देता है, जो ऐसी शर्तों के अधीन हो जो वह लागू करे। इस धारा का स्पष्टीकरण इंगित करता है कि धारा के उद्देश्य के लिए कर योग्य कारोबार का क्या अर्थ है। इस स्पष्टीकरण के अनुसार "कर योग्य कारोबार" का अर्थ है बिहार में किसी भी अवधि के दौरान हुई बिक्री पर एक व्यापारी के सकल कारोबार का वह हिस्सा जो स्पष्टीकरण के खंड (ए) और (बी) में निर्दिष्ट वस्तुओं से कटौती के बाद शेष रहता है। धारा 6 के तहत समय-समय पर कर मुक्त घोषित किसी भी वस्तु की बिक्री उन वस्तुओं में से एक है। धारा 6 राज्य सरकार को धारा में निर्दिष्ट शर्तों के अधीन इस अधिनियम के तहत किसी भी वस्तु या माल के वर्ग की बिक्री को कर से छूट देने का अधिकार देती है, जबकि धारा 7 सरकार को विक्रेताओं को कर से छूट देने का अधिकार देती है, और धारा 8 सरकार को उन बिंदुओं को निर्धारित करने के लिए अधिकृत करती है जिन पर माल पर कर लगाया जा सकता है या छूट दी जा सकती है। धारा 9 विक्रेताओं के पंजीकरण के प्रश्न से संबंधित है और यह प्रावधान करती है कि कोई भी व्यापारी जो धारा 4 के तहत कर का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है, तब तक व्यवसाय नहीं करेगा जब तक कि वह अधिनियम के तहत पंजीकृत न हो और उसके पास पंजीकरण प्रमाण पत्र न हो। धारा 11 के तहत पंजीकृत विक्रेताओं की एक सूची प्रकाशित की जाती है, और धारा 12 द्वारा ऐसे पंजीकृत विक्रेताओं से ऐसी तारीखों तक और ऐसे प्राधिकरणों को, जो निर्धारित किए जाएं, ऐसी

विवरणियां प्रस्तुत करने की अपेक्षा की जाती है। धारा 13 निर्धारण के लिए प्रक्रिया निर्धारित करती है, और धारा 14 की अपेक्षा है कि अधिनियम के तहत देय कर का भुगतान उस तरीके से किया जाएगा जो इसके बाद ऐसे अंतरालों पर प्रदान किया गया है जो निर्धारित किया जा सकता है। धारा 14 (2) में पंजीकृत विक्रेता से अपेक्षा की गई है कि वह सरकारी खजाने में उस विवरणी के अनुसार कर की पूरी राशि का भुगतान करे जो उसे दाखिल करनी है और उक्त विवरणी के साथ कोषागार से एक रसीद प्रस्तुत करनी है जिसमें ऐसी राशि का भुगतान दिखाया गया है।

इस प्रकार धारा 4 के तहत लगाए गए कर की वसूली के लिए प्रावधान करने के बाद, धारा 14 ए प्रभावी रूप से पंजीकृत विक्रेताओं को प्रतिबंधों और शर्तों के अनुसार उनके द्वारा देय कर का संग्रह करके अपने बकाया की प्रतिपूर्ति करने के लिए अधिकृत करता है। इसमें प्रावधान है कि कोई भी व्यापारी जो पंजीकृत व्यापारी नहीं है, खरीदारों से माल की बिक्री पर कर के रूप में कोई राशि प्राप्त नहीं करेगा और न ही कोई पंजीकृत व्यापारी ऐसे प्रतिबंधों और शर्तों के अनुसार कर का कोई संग्रह करेगा जो निर्धारित किए जाएं। यह हमें धारा 14 ए के प्रावधान पर ले जाता है जिसके साथ हम वर्तमान अपील में सीधे संबंधित हैं। वह इस प्रकार है:-

"बशर्ते कि यदि कोई व्यापारी इस धारा के प्रावधान या उसके तहत निर्धारित शर्तों और प्रतिबंधों का उल्लंघन करते हुए कर के रूप में कोई राशि एकत्र करता है, तो इस तरह से एकत्र की गई राशि, किसी भी दंड पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, जिसके लिए व्यापारी इस अधिनियम के तहत किसी अपराध के लिए उत्तरदायी हो सकता है, राज्य सरकार को जब्त कर ली जाएगी और ऐसा व्यापारी आयुक्त या धारा 3 के तहत उसकी सहायता के लिए नियुक्त किसी अधिकारी द्वारा उसे जारी किए गए निर्देश के अनुसार सरकारी खजाने में ऐसी राशि

का भुगतान करेगा और ऐसे भुगतान के चूक में, राशि को भूमि राजस्व के बकाया के रूप में वसूल किया जाएगा।"

इस परंतुक का प्रभाव स्पष्ट है। एक व्यापारी केवल धारा 14 ए के प्रावधान और उसके तहत निर्धारित शर्तों और प्रतिबंधों के अनुसार खरीदारों से कर के रूप में राशि एकत्र करने के लिए अधिकृत है। परंतुक में निर्दिष्ट शर्तों और प्रतिबंध अधिनियम के तहत बनाए गए सामग्री नियमों में पाए जाते हैं। यदि यह दिखाया जाता है कि एक व्यापारी ने नियमों द्वारा निर्धारित शर्तों और प्रतिबंधों का उल्लंघन करते हुए कर के रूप में राशि एकत्र की है, तो वह परंतुक में निर्दिष्ट रूप से ज़ब्त करने का जुर्माना लगाता है। इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि परंतुक के तहत विक्रेता पर ज़ब्त का जुर्माना लगाने से पहले यह दिखाया जाना चाहिए कि उसने नियमों द्वारा निर्धारित शर्तों और प्रतिबंधों के विपरीत काम किया है। यह दिखाने के लिए पर्याप्त नहीं होगा कि विक्रेता द्वारा विचाराधीन राशि का संग्रह अन्यथा अवैध या अनुचित है। धारा 14 ए में निहित वैधानिक प्रावधान या उस ओर से शर्तों और प्रतिबंधों को निर्धारित करने वाले नियमों का उल्लंघन ही परंतुक के तहत जुर्माना लगाने का आधार बन सकता है। यह स्थिति हमारे सामने विवादित नहीं है।

अपीलार्थी का तर्क है कि परंतुक वर्तमान मामले की ओर आकर्षित है क्योंकि पहले प्रतिवादी ने नियम 19 के परंतुक द्वारा लगाई गई शर्तों और प्रतिबंधों का उल्लंघन किया है, जबकि पहले प्रतिवादी का तर्क है कि इस बाद के परंतुक का उचित निर्माण अपीलार्थी की याचिका को उचित नहीं ठहराता है। इस प्रकार यह देखा जाएगा कि प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा उठाए गए प्रारंभिक बिंदु के निर्णय में नियम 19 के परंतुक के निर्माण का संकीर्ण प्रश्न शामिल है।

तथापि, उक्त परंतुक का अर्थ लगाने से पहले अधिनियम की धारा 33 का उल्लेख करना आवश्यक है। यह धारा 4 अप्रैल, 1951 को अधिनियमित की गई थी, लेकिन इसे 26 जनवरी, 1950 से स्पष्ट रूप से पूर्वव्यापी बना दिया गया है। इसलिए भौतिक समय पर इस धारा को लागू माना जाना चाहिए। धारा 33 (1) (ए) (आई) में प्रावधान है कि अधिनियम में कुछ भी निहित होने के बावजूद अधिनियम के तहत माल की बिक्री या खरीद पर कर नहीं लगाया जाएगा जहां ऐसी बिक्री या खरीद बिहार राज्य के बाहर होती है। धारा 33 (2) संविधान के अनुच्छेद 286 के खंड (1) के स्पष्टीकरण को उप-धारा (1) के खंड (ए) के उप-खंड (आई) की व्याख्या के लिए लागू करती है। यह सामान्य आधार है कि यदि अभी उद्धृत प्रासंगिक प्रावधान का अर्थ यूनाइटेड मोटर्स (1) के मामले में इस न्यायालय के निर्णय के आलोक में किया जाता है, तो इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि जो बिक्री वर्तमान कार्यवाही का विषय है, उसमें ऐसे लेनदेन शामिल हैं जिन पर अधिनियम के तहत कर नहीं लगाया जा सकता है। यही कारण है कि अपीलार्थी इस प्रावधान पर दृढ़ता से भरोसा करता है और तर्क देता है कि नियम 19 के परंतुक का अर्थ लगाने में विचाराधीन लेन-देन के संबंध में वास्तविक कानूनी स्थिति को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

आइए अब हम नियम 19 के परंतुक को पढ़ें। नियम 19 स्वयं उस प्रक्रिया को निर्धारित करता है जिसका पालन एक पंजीकृत विक्रेता को खरीदारों से माल की बिक्री पर कर के रूप में किसी भी राशि का भुगतान करने के लिए करना होता है। यह प्रक्रिया इसके द्वारा निर्धारित नकद ज्ञापन या बिल जारी करने को संदर्भित करती है। इस नियम के प्रावधान में कहा गया है कि ऐसा कोई भी पंजीकृत विक्रेता उस दर से अधिक कर के रूप में किसी भी राशि का भुगतान नहीं करेगा जिस दर पर वह अधिनियम के तहत कर का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है, या अपने कारोबार के ऐसे हिस्से के संबंध में कर के रूप में किसी भी राशि का भुगतान नहीं करेगा, जिसे

अधिनियम या इन नियमों के तहत अपने कर योग्य कारोबार के निर्धारण के लिए अपने सकल कारोबार से काटने की अनुमति है। अपीलार्थी परंतुक के उत्तरार्द्ध भाग पर निर्भर करता है और तर्क देता है कि प्रथम प्रत्यर्थी के कारोबार का हिस्सा जो विचाराधीन है, धारा 33 (1) (ए) (आई) के अंतर्गत आता है और इस प्रकार कर लगाने के लिए उत्तरदायी नहीं था। ऐसा होने पर प्रथम प्रत्यर्थी के लिए धारा 14 ए के तहत अपने खरीदारों से कर के माध्यम से कोई राशि एकत्र करने का कोई औचित्य नहीं था। धारा 14 ए की योजना पंजीकृत विक्रेता को अपने खरीदारों से कर की ऐसी राशि एकत्र करने की अनुमति देने के लिए है जो वह अपनी ओर से अपीलार्थी को देने के लिए उत्तरदायी है। पंजीकृत विक्रेता को दी गई ऐसी कर राशियों को एकत्र करने का अधिकार अनिवार्य रूप से अपीलार्थी को समान राशि का भुगतान करने के लिए उसके दायित्व को स्वीकार करता है। इसलिए अपने खरीदारों से कर के माध्यम से राशि एकत्र करने में पहले प्रतिवादी का आचरण धारा 14 ए का ही उल्लंघन है।

यह भी तर्क दिया जाता है कि धारा 33 (आई) (ए) (आई) के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए पहला प्रतिवादी परंतुक के उत्तरार्द्ध भाग के तहत अपने सकल कारोबार से प्रश्नगत लेनदेन की कटौती का दावा करने का हकदार था, और इसका स्पष्ट रूप से मतलब है कि उक्त परंतुक का पहला भाग उसके मामले में लागू होता है और यह उसे उक्त राशियों को प्राप्त करने से प्रतिबंधित करता है। अतः राशि एकत्र करने में उसका आचरण नियम 19 के परंतुक में निर्दिष्ट शर्तों का उल्लंघन है।

इन तर्कों की वैधता की सराहना करते हुए यह याद रखना प्रासंगिक होगा कि संविधान के अनुच्छेद 286 (1) के प्रावधानों के वास्तविक दायरे और प्रभाव के बारे में जनता के साथ-साथ राज्य प्राधिकरणों के मन में काफी भ्रम था: यह विवादित नहीं है कि भौतिक अवधि के दौरान और इससे पहले के वर्षों में पंजीकृत विक्रेता उन लेनदेनों के संबंध में कर का भुगतान करते थे जो वास्तव में धारा 33 (1) (ए) (आई) के तहत

कर लगाने के लिए उत्तरदायी नहीं थे और ऐसा कर अपीलार्थी द्वारा प्राप्त किया जा रहा था। वास्तव में, जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं कि अधिनियम की धारा 14 पंजीकृत विक्रेता पर अपनी वापसी के साथ कर के भुगतान के लिए एक रसीद प्रस्तुत करने का दायित्व लगाती है जो वापसी के तहत देय है। इस तरह के भुगतान पंजीकृत विक्रेताओं द्वारा समान लेनदेन के संबंध में किए गए थे और स्वीकार किए गए थे। यह एक दुर्घटना है कि यूनाइटेड मोटर्स (1) के मामले में इस न्यायालय के निर्णय के बाद पहले प्रतिवादी की मूल्यांकन कार्यवाही वास्तव में दूसरे प्रतिवादी द्वारा निर्णय के लिए ली गई थी। यदि अधिनियम के तहत कर का भुगतान करने के लिए पहले प्रतिवादी के दायित्व के बारे में प्रश्न उक्त निर्णय की तारीख से पहले तय किया गया था, तो इसमें कोई संदेह नहीं है कि उसे विचाराधीन लेनदेन के लिए कर का भुगतान करने की आवश्यकता होती। वास्तव में यह सामान्य आधार है कि सामग्री अवधि के लिए जारी अधिसूचना में विचाराधीन माल पर तीन पाई पर कर लगाया गया है "यदि बिक्री कर प्राधिकरण संतुष्ट है कि माल बिहार प्रांत के बाहर किसी भी व्यक्ति को व्यापारी द्वारा या उसकी ओर से भेजा गया है"। यह अधिसूचना "बिक्री" शब्द की परिभाषा के अनुरूप है जैसा कि तब था। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भौतिक समय पर अपीलार्थी ने सोचा कि वर्तमान अपील में विचाराधीन लेनदेन संबंधित अधिसूचना द्वारा निर्धारित तीन पाई की दर से कर का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी थे; पंजीकृत विक्रेताओं को भी इस मुद्दे पर कोई संदेह नहीं था; और इसलिए अपीलार्थी द्वारा पंजीकृत विक्रेताओं से और पंजीकृत विक्रेताओं द्वारा अपने खरीदारों से ऐसे लेनदेन के संबंध में कर एकत्र किए गए थे।

फिर भी, धारा 33 के अधिनियमन के बाद उक्त धारा के पूर्वव्यापी संचालन के बारे में कानूनी कल्पना को प्रभावी बनाया जाना चाहिए और धारा 19 के परंतुक का अर्थ यह माना जाना चाहिए कि विचाराधीन लेनदेन अधिनियम के दायरे से बाहर थे

और उनके संबंध में कोई कर नहीं लगाया जा सकता था। इस धारणा पर परंतुक का निर्माण करते हुए, क्या यह कहा जा सकता है कि प्रथम प्रत्यर्थी के कारोबार के हिस्से के संबंध में, जो विचाराधीन है, परंतुक के अर्थ के भीतर कटौती स्वीकार्य थी? हमारी राय में इस प्रश्न का उत्तर अपीलार्थी के पक्ष में नहीं दिया जा सकता है। नियम 19 स्वयं 1949 में बनाया गया था और धारा 33 के अधिनियमन के बाद इसमें संशोधन नहीं किया गया है। जैसा कि इसे तैयार किया गया था, स्वीकार्य कटौती का इसका संदर्भ स्पष्ट रूप से अधिनियम की धारा 6,7 और 8 के प्रावधानों पर आधारित था। यह स्थिति बिना किसी संदेह के स्पष्ट हो जाएगी यदि हम अधिनियम की धारा 5 के स्पष्टीकरण के आलोक में परंतुक में भौतिक शब्दों को पढ़ते हैं। शब्दों में स्पष्टीकरण उन कटौतियों की गणना करता है जो पंजीकृत विक्रेता के कर योग्य कारोबार को निर्धारित करने में की जानी हैं और यह उन कटौतीओं के लिए है जो स्पष्टीकरण में निर्दिष्ट तीन धाराओं के तहत स्वीकार्य हैं जिन्हें नियम 19 के परंतुक के बाद के भाग में संदर्भित किया गया है। इसलिए, धारा 33 (1) (ए) (आई) के बल पर प्रथम प्रतिवादी के कारोबार के एक हिस्से के अपवर्जन के दावे को परंतुक के तहत स्वीकार्य कटौती नहीं कहा जा सकता है।

इस प्रश्न पर दूसरे दृष्टिकोण से विचार किया जा सकता है। वे प्रावधान जो कुछ लेन-देनों के संबंध में कटौती करने या छूट देने की अनुमति देते हैं, स्पष्ट रूप से यह मानते हैं कि लेकिन उनके लिए विचाराधीन लेनदेन अधिनियम के तहत कर के लिए उत्तरदायी होंगे और इसलिए जब ऐसे लेनदेन रिटर्न में शामिल किए जाते हैं तो पंजीकृत विक्रेता को उनके संबंध में उचित कटौती का दावा करने की अनुमति दी जाती है। लेकिन, धारा 33 के संबंध में स्थिति पूरी तरह से अलग है; जो लेनदेन उक्त धारा के प्रावधानों को आकर्षित करते हैं, वे अधिनियम के दायरे से बाहर हैं और उन पर कोई कर नहीं लगाया जा सकता है। यदि यह सही स्थिति है तो ऐसे लेन-देन के संबंध में



पंजीकृत विक्रेता द्वारा किए जा सकने वाले दावे को कानूनी रूप से स्वीकार्य कटौती या छूट के दावे के रूप में नहीं माना जा सकता है; यह वास्तव में एक दावा है कि अधिनियम स्वयं उक्त लेन-देन पर लागू नहीं होता है। इसलिए, हमारी राय में यह नियम 19 के परंतुक के दूसरे भाग की भाषा पर दबाव डालना होगा ताकि यह माना जा सके कि विचाराधीन लेनदेन इसके दायरे में आते हैं।

इस संबंध में एक बात और ध्यान देने योग्य है। फॉर्म VI, जिसे धारा 12 के तहत विवरणी देने के लिए निर्धारित किया गया है, के लिए शुरू में सकल कारोबार का उल्लेख करने की आवश्यकता होती है, और फिर यह अधिनियम के तहत स्वीकार्य विभिन्न कटौती का प्रावधान करता है। यह प्रपत्र 1949 में निर्धारित किया गया था और अधिनियम में धारा 33 को जोड़ने के बाद इसमें संशोधन नहीं किया गया है। इस प्रपत्र को देखने पर इस तर्क पर विचार करना मुश्किल लगता है कि विचाराधीन लेनदेन के पूर्ण बहिष्कार का दावा प्रपत्र में निर्धारित किसी भी शीर्षक के तहत किया जा सकता है। हालाँकि, अपीलार्थी का तर्क है कि सकल कारोबार की पहली मद का अर्थ है संपूर्ण सकल कारोबार जिसमें सभी बिक्री लेनदेन शामिल होने चाहिए, चाहे वे बिहार के भीतर या उसके बाहर हुए हों, और इस तर्क के समर्थन में धारा 2 (i) में निहित "टऑवर" की परिभाषा पर निर्भरता रखी गई है। यदि मद 1 के तहत पूरे सकल कारोबार का उल्लेख किया जाना है, तो यह आग्रह किया जाता है कि विचाराधीन लेनदेन के बहिष्करण के दावे को प्रपत्र में निर्धारित कटौती वस्तुओं में से एक या दूसरे के तहत अच्छी तरह से समायोजित किया जा सकता है। हम इस तर्क को स्वीकार करने के लिए इच्छुक नहीं हैं। प्रपत्र जैसा कि इसे निर्धारित किया गया है, धाराओं में निहित सामग्री प्रावधानों के आलोक में समझा गया है। 6, 7 और 8 इस मामले का समर्थन नहीं करते हैं कि इसकी कई मदों को निर्धारित करने में यह इरादा था कि धारा 33 के तहत आने वाले लेनदेन को पहले मद 1 के तहत दिखाया जाना चाहिए और फिर

कटौती की शेष मदों में से एक या दूसरे के तहत बाहर रखा जाना चाहिए। इसके अलावा यह इंगित करना प्रासंगिक हो सकता है कि अध्याय VII का शीर्षक जो डीलरों द्वारा विवरणी जमा करने से संबंधित है, "कर योग्य कारोबार का विवरणी" है और यह तर्क योग्य है कि प्रपत्र VI में उल्लिखित सकल कारोबार का अर्थ "सकल कर योग्य कारोबार" हो सकता है न कि सकल कारोबार जिसमें वे लेनदेन भी शामिल हैं जो अधिनियम के दायरे से बाहर हैं।

फिर धारा 14 ए के उल्लंघन के बारे में तर्क के बारे में यह समझना मुश्किल है कि धारा 14 ए के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन कैसे किया गया है। धारा 14 ए में दो भाग हैं जिनमें से दोनों को नकारात्मक रूप में रखा गया है। जिस दूसरे भाग से हम प्रभावी रूप से संबंधित हैं, उसका इससे अधिक कोई अर्थ नहीं है कि एक पंजीकृत विक्रेता केवल ऐसे कर का संग्रह कर सकता है जो उसके द्वारा निर्धारित प्रतिबंधों और शर्तों के अनुसार देय हो। यदि तर्क यह है कि प्रथम प्रत्यर्थी किसी भी कर का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी नहीं था और इस प्रकार वह कोई संबंधित संग्रह करने का हकदार नहीं था, तो उसके द्वारा किया गया संग्रह धारा 14 ए के बाहर हो सकता है और अन्यथा अन्यायपूर्ण या अनुचित हो सकता है; लेकिन यह धारा 14 ए के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन नहीं है। वास्तव में धारा 14 ए स्वयं उन प्रतिबंधों और शर्तों को संदर्भित करती है जिन्हें निर्धारित किया जा सकता है, और जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं, ये शर्तें और प्रतिबंध सामान्य रूप से नियमों द्वारा और विशेष रूप से नियम 19 द्वारा निर्धारित किए गए हैं। इसलिए धारा 14 ए के तहत आग्रह किया गया तर्क हमें इस सवाल पर वापस ले जाता है कि क्या नियम 19 के प्रावधान का उल्लंघन किया गया है। इस प्रश्न से निपटने में हम इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकते हैं कि वर्तमान अपील में जिन प्रासंगिक प्रावधानों का अर्थ लगाया गया है, वे पंजीकृत विक्रेता पर गंभीर जुर्माना लगाते हैं, और इसलिए, भले ही जिस दृष्टिकोण के लिए अपीलार्थी

तर्क देता है वह शायद एक संभावित दृष्टिकोण हो, हम कोई कारण नहीं देखते हैं कि दूसरा दृष्टिकोण जिसके लिए पहला प्रतिवादी तर्क करता है और जो हमें अधिक उचित लगता है, उसे स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। परिणामस्वरूप हम मानते हैं कि धारा 14ए के परंतुक को पहले प्रत्यर्थी के खिलाफ लागू नहीं किया जा सकता है और इसलिए दूसरे प्रत्यर्थी द्वारा उसके खिलाफ पारित ज़ब्त करने का आदेश अनुचित और अवैध है।

इस निष्कर्ष को देखते हुए परंतुक की वैधता के खिलाफ पहले प्रतिवादी द्वारा उठाई गई आपत्तियों पर इस आधार पर विचार करना अनावश्यक है कि यह संविधान के अनुच्छेद 20 (1) और 31 (2) का उल्लंघन करता है। हम संयोग से यह जोड़ सकते हैं कि हमारे सामने दलीलों के दौरान हमने इस सवाल पर सभी विद्वान वकीलों को भी सुना है कि क्या उक्त परंतुक अनुच्छेद 19 (1) (च) के प्रावधानों का भी उल्लंघन करता है।

परिणाम यह है कि अपील विफल हो जाती है और लागत के साथ खारिज कर दी जाती है।

इस अपील का निर्णय 1958 की सिविल अपील संख्या 546 और 1959 की 115 को नियंत्रित करता है। वे भी विफल हो जाते हैं और लागत के साथ उन्हें बर्खास्त कर दिया जाता है।

अपील निरस्त की जाती है।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल "सुवास" की सहायता से अनुवादक हेमन्त सोनी द्वारा किया गया है ।

अस्वीकरण - इस निर्णय का अनुवाद स्थानीय भाषा में किया जा रहा है, एवं इसका प्रयोग केवल पक्षकार इसको समझने के लिए उनकी भाषा में कर सकेंगे एवं यह किसी अन्य प्रयोजन में काम नहीं ली जायेगी। सभी आधिकारिक एवं व्यवहारिक उद्देश्यों के लिए उक्त निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही विश्वसनीय माना जायेगा एवं निष्पादन एवं क्रियान्वयन में भी उसी को उपयोग में लिया जायेगा।